Bothriochloa pertusa

The biomass of *Bothriochloa pettusa* started to increase and then there was continuous decrease in the winter and summer seasons except in January and February on control and polluted grasslands. The peak biomass was observed as 589.28±122.23 g/m^2 and 230.72±62.34 g/m^2 on control and polluted grasslands, respectively in the month of October. The minimum biomass was recorded as 53.12±12.11 g/m^2 and 20.80±5.04 g/m^2 in the month of May on control and polluted grassland, respectively (Tables 4.1 and 4.2, Fig. 4.1) grasslands. The higher productivity of the present grassland was probable due to dominance of *B. Pertusa*.

Acknowledgement

Authors are thankful to the Principal, Nalanda College, Bihar Sharif Nalanda, Bihar for providing laboratory and library facilities.

References

- Bisht, N.S. and Gupta, S.K. (1985). Dry matter dynamics in a grassland community at the foothills of Garhwal Himalayas. Indian Journal of Ecology 12 (2): 200-204.
- Misra, M.K. and Misra, B.N. (1984). Biomass and primary, production in an Indian grassland. Tropical Ecology 25: 239-247.
- Murphy, P.G. (1975). Net primary productivity in tropical terrestrial ecosystem. In primary productivity of the Biosphere, pp. 217-231. Edited by H. Lieth and R.H. Whittaker Springer, New York.
- Pandey, D.D. and Sant, H.R. (1980). The plant biomass and net primary production of the protected and grazed grasslands of Varanasi. Indian Journal of Ecology 7 (1): 77-83.
- Singh, J.S. and Yadava, P.S. (1974). Seasonal variation in composition, plant biomass, and net primary productivity of a tropical grassland at Kurukshetra, India. Ecological Monographs 44: 351-376.
- Tripathi, J.S. (1970). Monthly variation in the standing crop, net production, nutrient content of the species and plant decomposition in grassland at Varanasi, Ph.D. thesis, Banaras Hindu University; Varanasi. India.

***

भारत में ग्रामीण परिवेश निवेश और उनके परिणाम

डॉ. धीरज कुमार पासवान *

शिक्षा सामाजिक–आर्थिक व्यवस्था का अनिवार्य हिस्सा है और इसका समाज के साथ बहुत अंतरंग संबंध है। यह अपेक्षाकृत बड़ी प्रणाली की एक उप–प्रणाली है। ये दोनों ही एक–दूसरे को बनाए रखने में एक–दूसरे की मदद करती है। शिक्षा को विकास का कारक और नतीजा दोनों माना जा सकता है। अल्पविकसित देशों में औपचारिक शिक्षा को आर्थिक विकास के निवेश के रूप में लिया जाता है, इसलिए काफी अधिक मात्रा में इसको वित्तीय सहायता दी जाती है। समष्टि स्तर पर किए गए अध्ययन (बेनेट 1967, पारिक 1982, विश्व बैंक, 1980 अ, 1980 ब) और व्यष्टि स्तर (माइक्रो लेवेल) पर किए गए अध्ययन (मार्टिन 1982, मेंडिस 1981, मोरइरा 1960, नैक्ष 1965) से इस बात के संकेत मिलते हैं कि विकास प्रक्रिया में स्कूल की शिक्षा काफी महत्वपूर्ण कारक हैं, जो कि इनके बीच का यह संबंध काफी जटिल और संश्लिष्ट होता है। इस क्षेत्र में अनुसंधान की दिलचस्पी पिछले दो दशकों में काफी बढ़ी है और हाल में इससे संबंधित साहित्य की समीक्षा से भी यह बात जाहिर होती है। (कालक्लोक 1982) ग्रामीण परिवारों, जनसंख्या और ग्राम समुदायों के आधार पर किए गए वर्तमान अध्ययन में इस दुहरे संबंध के एक पहलू पर ध्यान दिया गया है यानी औपचारिक शिक्षा का हमने परिवर्तन के कारक के रूप में इस आलेख में अध्ययन किया है। इसको हमने सामाजिक व्यवस्था का परिणाम उतना नहीं माना है जैसा कि कुछ दूसरे विद्वान मानते हैं। (कारनॉय 1970, क्लिगनेट और फास्टर 1967, डंकन 1967, मिल्स 1959, स्पैंडी 1967) इस विषय पर ध्यान केंन्द्रित करने की वजह विकास की वह अवस्था है यानि जिस जगह हम आज हैं तथा निवेश की वह मात्रा, जो शिक्षा समेत विभिन्न ग्राम विकास के कार्यक्रम में लगाई जा चुकी है।

विकास के अनेक कार्यक्रमों में साक्षरता और शिक्षा की भूमिका को रेखांकित किया जाता है। यह दृष्टिकोण इस मान्यता पर आधारित है कि शिक्षा के जरिए कर्मचारियों में ऐसा कौशल पैदा किया जाता है जो सरल आधारभूत ढाँचे वाले उत्पादन के बजाय अनेक सेक्टरों वाली जटिल अर्थव्यवस्था के लिए जरूरी होता है। दूसरे शब्दों में यह माना जाता है कि शिक्षा बाहरी पर्यावरण पर नियंत्रण का

***एम.ए., पीएच.डी., इतिहास, बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफरपुर**

बेहतर साधन है। साथ में ऐसा भी महसूस किया गया है कि अन्य कार्यक्रमों और नीतियों के अभाव में अकेले शिक्षा विकास को तेज करने तथा सामाजिक परिवर्तन लाने में सक्षम नहीं है। आर्थिक विकास और सामाजिक परिवर्तन के विभिन्न पक्षों को एक साथ और एक गति से आगे बढ़ते हुए हम नहीं पाते हैं। परिणामस्वरूप विकास की गति को तेज करने के प्रयासों का विकास के विभिन्न आयामों पर अलग–अलग प्रभाव पड़ता है। इसी प्रकार के विकास के अलग–अलग पहलुओं पर भी शिक्षा का असर एक जैसा नहीं होता है।[1]

इस आलेख में ग्रामीण समाज के विभिन्न पहलुओं पर शिक्षा की उपलब्धियों से पड़ने वाले प्रभाव की मात्रा और स्वरूप की जाँच पड़ताल का उपक्रम किया गया है। शुरू में हमने एक आधारभूत प्रश्न उठाया है कि ग्रामीण समाज के विभिन्न स्तरों पर आपस में शिक्षा के स्तर में क्या कोई महत्वपूर्ण अंतर है? इसके पहले अनेक लोगों ने जो अध्ययन किए हैं, उनमें निष्कर्ष रूप में बताया गया है कि न सिर्फ शिक्षा के स्तर में फर्क है बल्कि मौजूदा शिक्षा व्यवस्था इन असमानताओं को जारी रखने और उनको बढ़ाने का काम करती है। एक बार अगर यह बात पक्की हो जाती है तो समाज के अलग–अलग स्तरों के संदर्भ में, शिक्षा और विकास तथा सामाजिक परिवर्तन के विभिन्न पहलुओं के बीच जो संबंध है, उन्हें अधिक सार्थक तरीके से समझा जा सकता है।

हमारा सरोकार शिक्षा के प्रभाव पर केन्द्रित है, जिसमें प्रमुख रूप से फार्म अर्थव्यवस्था का आधुनिकीकरण, जनांकिकीय व्यवहार, गतिशीलता और परिवर्तन, राज्य की संस्थाओं के उपयोग और विकास प्रयासों को आत्मसात करने की क्षमता है। अगर इन मुद्दों को अन्वेशणपरक सवालों में बदल दिया जाए तो इनका रूप इस प्रकार होगा– क्या जनसंख्या के शैक्षिक स्तर से सामाजिक, जनांकिकीय और आर्थिक व्यवहार पर असर पड़ता है? यदि ऐसा है तो क्या शिक्षा के उन महत्वपूर्ण स्तरों को व्यवहार के विभिन्न बदलावों के संदर्भ में पहचाना जा सकता है? क्या शैक्षिक स्तर की कोई उच्चतर सीमा है जिसके आगे इस स्तर के उन्नत होने की उपर्युक्त संदर्भ में कोई सार्थकता न रह जाती हो?

आगे चलकर इन सवालों का जवाब देने का प्रयास किया गया है। कर्नाटक राज्य के तुमकुर जिले की ग्रामीण जनसंख्या को इसके लिए अध्ययन का आधार बना गया है। आदर्श स्थिति तो यह होती है कि आँकड़ों का संकलन करने के पहले विश्लेषण का खांका तैयार कर लिया जाता और विवेचन–विश्लेषण के खांके के आधार पर किया जाता है। लेकिन हम प्रस्तुत आलेख में इस रास्ते से थोड़ा अलग हट रहे हैं क्योंकि अध्ययन के लिए हमें काफी बड़ी मात्रा में आँकड़े उपलब्ध हैं।[2]

तुमकुर परियोजना के दौरान ही इसकी प्रश्नावली के आँकड़ों को संगणक की मदद से व्यवस्थित किया गया। गौर करने की बात यह है कि दोषपूर्ण और अनुपयोगी सूचनाओं को इसमें से अलग कर दिया गया है। इस प्रकार प्रस्तुत विश्लेषण में 25713 परिवारों से उपलब्ध आँकड़ों का विश्लेषण किया गया है। इस पूरे अध्ययन में इस कथन को हमने अपना मार्गदर्शक आधार बनाया है कि सामान्य रूप से ग्रामीण परिवारों की विशेषताओं और विशेष रूप से बगसमरध्स परिवारों का आर्थिक व्यवस्था के अध्ययन के लिए जो पद्धतियाँ हमारे पास हैं, वे अपेक्षाकृत पुरानी है।[3] (इवेंसन तथा अन्य, 1980) इस समय अध्ययन की जो भी विधियाँ उपलब्ध है, वे परिष्कार की उस ऊँचाई तक नहीं पहुँच पाई है कि पुरानी सरल पद्धति का छोड़कर उनका इस प्रकार के अध्ययन में उपयोग किया जाए क्योंकि उस सरल पद्धति में भी सारणीयन के विभिन्न रूपों का इस्तेमाल करके शिक्षा की उपलब्धि और जनसंख्या के सामाजिक व्यवहार के संश्लिष्ट संबंधों का पता लगाया जाता है।

समान समूहों या समान स्तरों के परिवारों को एक साथ करने के लिए जो भी मानदंड हम अपनाएँ, वह मानदंड ऐसा होना चाहिए जिसके आधार पर बनाये गये समूह हमारे समाज के अलग–अलग स्तरों का चित्र प्रस्तुत करें। यदि अपने ग्रामीण जन समुदाय पर निगाह डालें तो हम पायेंगे कि अधिकांशतः वह अपनी आजीविका के लिए खेती पर निर्भर हैं। इसलिए हमने परिवारों के वर्गीकरण के लिए जोतों के आकार को ही आधार बनाया है। (प्रति परिवार जोत का आकार)। ऐसा वहीं किया गया है जहाँ किसी परिवार की आय का मुख्य स्रोत खेती है। खेती करने वाले परिवारों की चार कोटियों की पहचान की गईः पहली कोटि सीमांत की है (जिसके पास 2 एकड़ से कम जमीन है), दूसरी कोटि में छोटे किसान आते हैं (जिनके पास 2 से 5 एकड़ तक जमीन है), तीसरी कोटि मध्यम किसानों की है (इसमें 5 से 25 एकड़ तक की जमीन वाले किसानों को रखा गया है) तथा बड़े किसानों की चौथी कोटि है (इसमें 25 एकड़ से ज्यादा जोतवाले किसानों को रखा गया है)। इनलोगों की जमीनों को गुणवत्ता के आधार पर तीन श्रेणियों में बाँटा गया है। वे हैं नम, सूखी तथा बागान भूमि। इस वर्गीकरण में बिना भूमि की गुणवत्ता के अंतर को ध्यान में रखे, कुल भूमि को ही आधार बनाया गया है। यह कोई गंभीर बाधा नहीं है क्योंकि यहाँ की 80 प्रतिशत भूमि सूखी है। शेष जिन परिवारों का पेशा खेती नहीं है, उन परिवारों का वर्गीकरण उनके मुखिया के पेशे के आधार पर किया गया है। इस मानदंड के आधार पर हमनें परिवारों को निम्नांकित रूपों में बाँटा है– यथा खेत, मजदूर, कारीगर, व्यापारी, व्यावसायिक, वेतन भोगी तथा उनके बीच की फुटकर श्रेणी। सारणी 1.1 में इन निदर्श गाँवों के परिवारों को सर्वेक्षण के बाद समूहों में बाँटकर प्रस्तुत किया गया है।[4]

सारणी–1.1
पेशे के आधार पर निदर्श परिवारों का वितरण

पेशा समूह	परिवारों की संख्या	परिवारों का प्रतिशत
खेत मजदूर	4340	16.88
कारीगर	1199	4.66
सीमांत किसान	4868	18.93
छोटे किसान	6893	26.81
मध्यम किसान	5892	22.91
बड़े किसान	281	1.09
वाणिज्य तथा व्यापार	614	2.39
व्यावसायिक तथा वेतन भोगी	1279	4.97
अन्य (फुटकर)	347	1.35
योग	**25713**	**100.00**

यहाँ पर शैक्षिक स्तर का आशय लोगों की औपचारिक शिक्षा से है। आमतौर पर किसी व्यक्तिगत सदस्य द्वारा स्कूल में बिताए गए समय का इस्तेमाल शिक्षा के आपसी संबंधों को समझने की कोशिष के रूप में किया गया है। लेकिन चूँकि विश्लेषण के अधिकांश भाग का संबंध परिवारों की विशेषताओं से है, इसलिए इकाई के रूप में एक परिवार के लिए शैक्षिक स्तर का मापक विकसित करना हमारे लिए जरूरी हो गया है। यह गौर करने की बात है कि व्यवहार संबंधी विशेषताएँ तो परिवारों के सदस्यों की अपनी–अपनी होती है, जैसे किसी किसान का खेती की नई प्रौद्योगिकी को अपनाना, लेकिन यह बात तर्कसंगत लगती है कि परिवार के दूसरे सदस्य भी इसके विषय में लिए जाने वाले निर्णय को प्रभावित करता हैं। खासतौर पर जो उदाहरण ऊपर दिया गया है उसके निर्णय में घर के प्रौढ़ पुरूष सदस्यों के विचारों का प्रभाव अवश्य पड़ता है।

किसानों में शिक्षा का बढ़ता हुआ स्तर उनकी जोतों से जुड़ा हुआ है। विभिन्न शैक्षिक स्तरों पर परिवारों के मुखिया की तुलना करने पर यह तथ्य बार–बार सामने आता रहा है। किसानों के प्रत्येक समूह में सबसे बड़ा अनुपात बिना स्कूल शिक्षा वाले परिवारों के मुखिया का है लेकिन वेतनभोगी व्यावसायिक समूहों में स्थिति इससे भिन्न है। इनमें परिवारों के मुखिया का अधिकतम अनुपात ऐसा है जिसकी स्कूल शिक्षा 8 से 10 साल तक की है।[5]

यह बात ध्यान देने योग्य है कि हर परिवार में सबसे अधिक पढ़े–लिखे पुरूष सदस्य की योग्यता उस परिवार के मुखिया की शैक्षिक योग्यता से प्रायः ज्यादा है। यह बात हर पेशेगत समूह में देखी जा सकती है। व्यावसायिकों अथवा वेतनभोगी

लोगों के मामले में बढ़ोत्तरी अपेक्षाकृत काफी कम है। जहाँ परिवार के मुखिया का शैक्षिक स्तर काफी ऊँचा है वहाँ खेत मजदूर समेत पूरे खेतिहर समुदाय में परिवार का शैक्षिक स्तर बढ़ता नजर आता है। लेकिन ऐसा तब होता है जब हम परिवार के शैक्षिक स्तर को प्रौढ़ सदस्यों के उच्चतम शैक्षिक स्तरों के आधार पर दर्शाएँ।

यद्यपि हमारी जनसंख्या का बहुत बड़ा हिस्सा, विशेष रूप से ग्रामीण इलाका, निरक्षर है फिर भी साक्षर जनसंख्या का अनुपात बढ़ता जा रहा है। ऐसा देखा गया है कि इन साक्षरों के बढ़ते अनुपात के बावजूद जनसंख्या के बढ़ने के साथ–साथ निरक्षरों की वास्तविक जनसंख्या भी बढ़ती रही है। जहाँ साक्षरों के अनुपात में इस बढ़ोत्तरी का कारण शैक्षिक कार्यक्रम, स्कूलों का विस्तार और विकासशील समाज की मांग है, वहीं यह सवाल हमारे मन में चिंता पैदा करता है कि क्या जनसंख्या को दी जानेवाली शैक्षिक सुविधाएँ समाज के सभी वर्गों को बराबर–बराबर मिल पा रही है अथवा आर्थिक हैसियत तथा विभिन्न ग्रामीण वर्गों की शैक्षिक उपलब्धियों का फायदा उनकी अगली पीढ़ी में दिखाई देता है।

इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता है कि शैक्षिक स्तर के लिहाज से विभिन्न वर्गों के बीच असमानताएँ कम हो रही हैं और यह भी शिक्षा के पैमाने के दोनों ही छोरों पर असमानताओं में बहुत बड़ा अंतर है। इससे यह बात जाहिर होती है कि एक समूह की निरक्षरता के कारण होनेवाले नुकसान कालांतर में भी ज्यों–का–त्यों बना हुआ है तथा छनने की प्रक्रिया काम कर रही है जिसके कारण कमजोर वर्गों का बहुत बड़ा तबका स्कूल शिक्षा को बरकरार रखने में असमर्थ है। दूसरी ओर सम्पन्न वर्ग के अधिकाधिक लोग शिक्षा के ऊपरी शिखर पर पहुँचने में कामयाब हो रहे हैं लेकिन इनका अनुपात फिर भी बहुत कम है। यह शिक्षा का भेदभावपूर्ण विकास है। इसका प्रभाव भावी पीढ़ी की शैक्षिक उपलब्धि पर पड़ता है। यह प्रभाव उस आर्थिक और सामाजिक प्रभाव के अतिरिक्त हैं।[6]

समय के साथ और विशेष रूप से स्वतंत्रता मिलने के बाद से शैक्षिक अवसरों का विस्तार हुआ है और इस विस्तार के फलस्वरूप कुल जनसंख्या के अंदर साक्षरों के अनुपात में साधारण लेकिन महत्वपूर्ण वृद्धि हुई है। यह वृद्धि पिछड़े हुए इलाके में 5–14 साल की आयु वर्ग में साक्षरता दर तकरीबन 40 प्रतिशत पहुँचती है, वहीं 60 साल अथवा इससे ऊपर की आयु वर्ग में यह 10 प्रतिशत से कुछ ही ऊपर जाती है।

शिक्षा को ऐसे कारक के रूप में देखा गया है जिसके कारण लोग गाँव से बाहर चले जाते हैं इस वजह से गाँव शिक्षित मानव शक्ति विहीन हो जाता है। आठ साल की स्कूल शिक्षा अधिक महत्वपूर्ण अवस्था मानी गई है। इस स्तर पर

पहुँचकर बाहर जाने की दर काफी बढ़ जाती है। इस तरह काम करने वालों की दृष्टि से विचार करें तो ग्रामीण नगरीय असमानता जारी रहती है।

शिक्षा और विकास के बीच आनुभाविक संबंधों को विरासत में मिले ढ़ाँचे की कमजोरियों तथा असमानताओं के संदर्भ में देखा गया है। शिक्षा से बेहतर और जल्दी सामाजिक लाभ पाने के लिए यह ढ़ाँचे में बदलाव पर ध्यान केंद्रित करता है। विकास के साथ जो कि इसके संबंध द्वि–दिशात्मक हैं, अकेली शिक्षा गरीबी की रूकावटों को तोड़ने में असमर्थ है। यद्यपि यह उत्प्रेरक का काम करती है, जो एक तरफ तो गुणवत्ता में सुधार लाकर श्रम की उत्पादकता को बढ़ाती है, दूसरी तरफ यह उत्पादकता, मृत्यु दर तथा आव्रजन पर अपना प्रभाव डालकर यह श्रम की मात्रा को भी कम करता है। इसलिए कहा जा सकता है कि विकासशील देशों में विकास प्रक्रिया के दौरान जो असमानता पैदा होती है, उस असमानता को दूर करने का यह एक महत्वपूर्ण तथा कारगर हथियार है।

संदर्भ सूची :

1. डी.एम. सिंह एवं अन्य, भारत में शिक्षा का विकास, नवदीप प्रकाशन, पटना, 2005, पृ 132।
2. आइटन, 1971, ए फैक्टर एनालिसिस ऑफ मॉडर्नाइजेशन इन विलेज इंडिया, इकॉनोमिक जर्नल, पृ. 81।
3. आर. एफ. इवेंसन, बी. एम. पॉपकिन एंड ई. के. क्विजोन, 1980, न्यूट्रीशन वर्क एंड डेमोग्राफिक विहेवियर इन रूरल फिलीपीन हाउस होल्ड, एच. पी. विनसेंज तथा अन्य, रूरल हाउसहोल्ड, स्टडीज इन एशिया, सिंगापुर, सिंगापुर यूनिवर्सिटी प्रेस में संकलित।
4. बी. आर. हार्कर, 1974, द कॉन्ट्रीब्युशन ऑफ स्कूलिंग टू एग्रीकलचरल मॉडर्नाइजेशनः एन इंपिरियल एनैलिसिस, पी. फास्टर और जे. आर. शेफील्ड (सं.) द वर्ल्ड इयर बुक ऑफ एजुकेशनः एजुकेशन एंड रूरल डवेलपमेंट में संकलित।
5. जी. मेंडिस, 1981, एजुकेशन इन प्रोसेस ऑफ विलेज डेवलपमेंट, इकॉनोमिक रिव्यू, संख्या–6।
6. एम. नैश, 1965, द रोल ऑफ विलेज स्कूल्स इन द प्रोसेस ऑफ इकॉनोमिक मॉडर्नाइजेशन, सोशल एंड एजुकेशनल स्टडीज, संख्या–14।

भारत छोड़ो आन्दोलन : परिस्थितियाँ एवं महत्त्व

अवकाश कुमार*
विजय कुमार*

जब हमारे भारतवर्ष की पुण्य भूमि अंग्रेजों की दासता की जंजीर में जकड़ी थी, तो इस जंजीर को तोड़ने के लिए बारम्बार देशभक्त सपूतो ने अंग्रेजी हुकूमत के विरूद्ध ईंट से ईंट बजाने का काम किया, उदाहरणार्थ – सन् 1857 ई० का प्रथम स्वतंत्रता संग्राम, 1920–22 का असहयोग आन्दोलन, खिलाफत आन्दोलन, 1930 ई० में सविनय अवज्ञा आन्दोलन और फिर 1942 का भारत छोड़ो आन्दोलन। बेशक 1942 का भारत छोड़ो आन्दोलन भारत ही नहीं, वरन् विश्व के तमाम आन्दोलन में श्रेष्ठ था क्योंकि यह किसी खास वर्ग या जाति या आयु के लोगों का आन्दोलन न होकर एक राष्ट्रव्यापी आन्दोलन था। 1942 ई० का आन्दोलन पुराने सब प्रयत्नों से ध्येय, नीति निपुणता, संगठन, बलिदान, विस्तार, जनोत्साह आदि सभी बातो में कहीं बढ़ा–चढ़ा था। यदि हम सन् 1942 ई० के आन्दोलन का अध्ययन करें तो क्रांति होने के निम्नलिखित कारण नजर आते हैं :–

1. **क्रिप्स मिशन की असफलता –** क्रिप्स वार्ता असफल हो गयी थी। क्रिप्स के इस कथन ने कि क्रिप्स योजना को 'स्वीकार करो अथवा छोड़ दो', ब्रिटेन की सच्ची मनोवृत्ति को स्पष्ट कर दिया कि ब्रिटिश सरकार भरत के संवैधानिक गतिरोध को दूर नहीं करना चाहती है। यही नहीं, क्रिप्स महोदय ने क्रिप्स वार्ता की असफलता का समस्त उत्तरदायित्व कांग्रेस पर डाला था। मौलाना आजाद ने अपनी पुस्तक 'India wins Freedom' में लिखा है कि, 'अनेक राजनीतिक दलों के साथ लम्बी वार्ताओं का एक मात्र उद्देश्य संसार के देशों के सामने यह सिद्ध करना था कि कांग्रेस भारत की सच्ची प्रतिनिधि संस्था नहीं है और भारतीयों मे एकता के अभाव के कारण ही ब्रिटेन भारत को सत्ता हस्तान्तरित नहीं कर सकता।'

ऐसी परिस्थिति में कांग्रेस ने जनता में फैली निराशा को दूर करने के लिए एवं स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए नया आनदोलन प्रारम्भ करने का निश्चय किया।

***शोधार्थी : इतिहास विभाग वीर कुंवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा**
***शोध–निर्देशक : असिस्टेंट प्रोफेसर, इतिहास विभाग ग्राम भारती कॉलेज, रामगढ़ (कैमूर)**